सेठ गोविन्ददास के नाटकों में गाँधीवाद

डॉ. शगुफ्ता नियाज़

हिन्दी नाटककार की हैसियत से सेठ गोविन्ददास बीसवीं शताब्दी के नाटककार हैं उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, समस्यामूलक तथा जीवनीपरक नाटक लिखें उनके बताए आदर्श हमारे वर्तमान समय की भी आवश्यकता है। भारतीय संस्कृति का नवीनीकरण अर्थात् गाँधीवाद का प्रभाव पुष्ट रूप में उभरा है। सेठ गोविन्ददास उस आर्य परम्परा के साहित्यकार हैं, जो जीवन को आध्यात्मिक लक्ष्य पर केन्द्रीभूत करके लोक यात्रा करते हैं। आध्यात्मिकता के कारण ही सामयिक घटनाओं को एक उज्ज्वल आदर्श के 'शेड' से प्रकाशित करना इस परम्परा के साहित्यकारों का प्रयत्न रहा है। अपने देश की वर्तमान सार्वजनिक भाषा में यह परम्परा गाँधीवाद के नाम से जानी जाती है।

सेठ जी ने राष्ट्रसेवा के लिए जो त्याग दिया है उससे सभी लोग अच्छी तरह परिचत हैं उनके जैसे सम्पन्न परिवार के व्यक्ति के लिए गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन में कूदने का मतलब था अपनी सम्पत्ति और समृद्धि की पूर्णाहूति देना और अंग्रेज़ों का कोपभाजन बनना जिनके हाथ में उस समय संपूर्ण सत्ता थी। आज़ादी की लड़ाई में उन्होंने बड़ी निष्ठा और लगन से हिस्सा लिया और अपने मार्ग से कभी नहीं हटे। सेठ गोविन्ददास ने साहित्य के सभी रूपों को अपने योगदान से समृद्ध किया। एक सच्चे गाँधीवादी की तरह उनका साहित्य हमें शान्ति और प्रेम का संदेश देता है। जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में "सेठ गोविन्ददास हमारे पुराने साथी हैं। तीस वर्ष से अधिक हमारा साथ कांग्रेस के और देश के कामों में रहा है, आज़ादी की लड़ाई में हमेशा यह आगे रहे। हिन्दी साहित्य और राष्ट्रभाषा हिन्दी को बढ़ाने में इन्होंने बहुत मदद की।[1]

सेठ गोविन्द दास जी गाँधीवादी विचारक थे, साथ ही राजनीति में कांग्रेस के साथ रहते हुए भी वे कला जगत के प्राणी हैं फलतः एक महान परम्परा के अनुयायी होते हुए भी उनमें जीवन और जगत को देखने की वह कलात्मक स्वतन्त्र दृष्टि भी है जो मनुष्य को कोरे नैतिक बन्धनों में ही नहीं बल्कि उसकी मनोवैज्ञानिक विवशताओं में भी देखी जा सकती है। नैतिक बन्धन (आदर्शवाद) मनुष्य की प्रवृत्तियों को कन्सेशन नहीं देता, जैसे- गाँधीवाद; किन्तु कलाकार उच्चतम आदर्श को सामने रखकर भी मनुष्य की विवश प्रवृत्तियों के प्रति उदार रहता है। यहीं पर वह यथार्थवाद को भी छू देता है। साहित्य में तीन विचारधाराएं हैं आदर्शवाद, यथार्थवाद, आदर्शोंमुख यथार्थवाद। आदर्शवाद की परम्परा में गाँधीवाद का साहित्य है आदर्श और यथार्थ के संगम में विश्व साहित्य की जो धारा बह रही है उसी के साहित्यकार हमारे यहाँ नाटकों में सेठ गोविन्ददास जी भी हैं।

उन्होंने ऐतिहासिक, सामाजिक राजनीतिक सांस्कृतिक विषयों पर 100 से अधिक नाटक और एकांकी नाटकों की रचना की है- कर्तव्य, हर्ष, प्रकाश, स्पद्र्धा, सिद्धान्त स्वातंत्र्य सेवापथ, सप्त रश्मि (एकांकी नाटक-

संग्रह) अधिकार लिप्सा नहीं, वह मरा क्यों?, मानव मन, मैत्री, धोखेबाज़ कंगाल चार नाटकों का संग्रह- त्याग या ग्रहण, हिंसा या अहिंसा प्रेम या पाप, गरीबी या अमीरी पाँच नाटकों का संग्रह सुख किसमें ?, संतोष कहाँ ? महत्त्व किसे?, बड़ा पापी कौन? दो नाटकों का संग्रह दलित कुसुम, पतित-सुमन पंचभूत, चतुर्थपथ, अष्टदल, मुद्राराक्षस आदि उनके प्रमुख नाटक हैं।

"सेठ जी कांग्रेस के स्तम्भों में से एक हैं, जिन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम की सिद्धि के लिए अपने को आत्मसमर्पित कर दिया। आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेने के कारण ही वह बहुत बार जेल गए। जेल में उन्होंने अध्ययन-मनन, चिन्तन एवं लेखन पर्याप्त समय में मिला यही कारण है कि जेल उनके लिए सरस्वती मंदिर बन गया।

वेरियर इलियन के शब्दों में- "सेठ गोविन्ददास ने अपने जीवन के आठ वर्ष जेल में बिताए, महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी होने के कारण वे इस तथ्य को बिना किसी पछतावे के स्वीकार करते हैं क्योंकि वे कारावास में बिलकुल भी अशक्त नहीं हुए और उस समय को चैरासी नाटक की रचना कर उपयोगी बनाया जिसमें पाँच नाटकों के अंग्रेजी अनुवाद भी हो गए हैं। इन नाटकों की रचना हिन्दी में हुई है।

गाँधीजी ने अपने पूरे जीवन में अहिंसा का प्रयोग किया और सम्पूर्ण संसार को भी इस सिद्धान्त को अपनाने पर बल दिया। भारत में जब भी साम्प्रदायिक दंगा भड़का तो गाँधीजी ने अहिंसा से उसे शांत किया। अहिंसा एक ऐसा मार्ग है जिस पर चलकर मानव कल्याण सम्भव है। तलवार के ज़ोर से कोई वस्तु छीनी जा सकती है पर सुख शांति के लिए अहिंसा का मार्ग उत्तम है। ईश्वर ने मनुष्य को जो शक्तियाँ प्रदान की हैं उनमें अहिंसा प्रबलतम है। उनके नाटकों में बहुतायत से ऐसे उद्धरण हमें देखने को मिलते हैं जिसमें गाँधीवादी अहिंसात्मक दृष्टिकोण अपनाकर नाटकों का अन्त सुखान्त किया गया है।

विजय बेलि, हिंसा या अहिंसा नाटक में इसी भावना को केन्द्र में रखकर सेठ गोविन्ददास ने अहिंसा सन्दर्भ में भी आज इसी प्रेम की का महत्त्व दिखाया है। वर्तमान स्थिति में भी हिन्दुस्तान-पाकिस्तान को भी इसकी आवश्यकता है। हिंसा से तो केवल हिरोशमा नागासाकी का इतिहास ही दोहराया जा सकता है। जैसे 'विजय बेलि' नाटक में सच्ची विजय प्रेम व अहिंसा से ही सम्भव है हिंसा तथा युद्ध से नहीं। एक उद्धरण उल्लेखनीय है मरते समय वह अपनी पत्नी से कहता है- "तुम ठीक कहती हो धर्म युद्ध के सदृश कोई वस्तु नहीं हिंसा से हिंसा की उत्पत्ति हो सकती है शांति की नहीं। युद्ध से संसार का कल्याणकारी साम्राज्य स्थापित नहीं हो सकता। मैं यह मानता हूँ कि संगठन का कल्याण एक सूत्र में बंधने पर ही निर्भर है। संसार का एक सूत्र में बांधना युद्ध से सम्भव नहीं- आज हो या कल- सौ वर्ष में हो या हज़ार वर्ष में हो या दस हज़ार वर्ष में मूल्य व हृदय परिवर्तन द्वारा केवल अहिंसा द्वारा ही संसार का कल्याणकारी राज्य स्थापित हो सकता है। सच्चा विजेता वही बनेगा जो संसार को युद्ध से नहीं वरन प्रेम से जीतेगा।[2]

इसी प्रकार 'हिंसा से अहिंसा' को श्रेष्ठ बताते अगला नाटक भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है- 'हिंसा या अहिंसा' नामक नाटक में मिल मालिकों और मिल मज़दूरों के संघर्ष को लेकर लिखा गया है। वयोवृद्ध माधवदास मिल का संस्थापक है। वह पुराने ढंग का अनुभवी महाजन है। मज़दूरों से भाईचारा जोड़कर परस्पर सद्भाव के बिना किसी अशान्ति के अपना कारोबार करता रहा है। उसका उत्तरधिकारी दुर्गादास नई शिक्षा पाए हुए आधुनिक पूँजीपति व्यापारी है। मज़दूरों को वह कीटपतंग समझता है। मज़दूरों के दो नेता वयोवृद्ध की समझदारी और अलकनंदा की संवेदना से झगड़ा निपटता नहीं। इस द्वन्द्व का अन्त त्रिलोचनपाल को गोली मारकर स्वयं आत्महत्या की परिणति में होता है। (इस नाटक में उन्होंने दिखलाया है कि वर्ग युद्ध से पूँजीवाद और श्रमवाद दोनों का नाश हो जाएगा- उत्तेजना रहित सहयोगपूर्ण स्वभाव से एक ही रोज़गार का रूपया किसी फिरके के पास बहुत ज्यादा हो जाता है और दूसरे के पास बहुत कम आने लगता है तब उपद्रव हुए बिना नहीं रहती। बाँट-बाँटकर खाया जाता है। आदमी में जितनी आदमियत होगी, वह उतना अधिक सुदृढ़ होगा, उतनी ही कामयाब रोज़गारी ही पूँजीपतियों और श्रमिकों की समस्या सुलझ सकती है।[3] सेठ गोविन्द दास गांधीजी के दर्शन से बहुत प्रभावित थे।

गाँधीजी ने सम्पूर्ण जीवन साम्प्रदायिक एकता के लिए अर्पित किया था उनकी मृत्यु एकता के लिए वरदान है, उनके प्रयत्नों को इन शब्दों में हम समझ सकते हैं कि- "मैं उन आठ मज़दूरों को याद रखूँगा जिन्होंने यमुना के निकट ....मैदान में चिता तैयार करने में सहायता की थी। इन मज़दूरों ने चिता पर चंदन की लकड़ियाँ रखते हुए मुझे बताया था कि वे महात्मा जी से प्रेम करते थे क्योंकि वे मुलसमानों के सच्चे दोस्त थे।

गाँधीजी के सिद्धान्तों के अनुरूप ही कर्तव्य को अमरता के साथ जोड़ते हुए सेठ गोविन्द दास ने 'गांधीजी' नाटक में लिखा। ''जिसकी कीर्ति नष्ट हो गई, चाहे वह जीवित दिखे, किन्तु यथार्थ में वह मरा हुआ है। हर परिस्थिति में जीवन वांछित नहीं ... मरण के पश्चात् मनुष्य कीर्ति रूप से ही जीवित रह सकता है। मैं मरण के साथ मर जाना नहीं चाहता।''[4] इन पंक्तियों में ऐसा प्रतीत होता है कि गाँधीजी का देहावसान भारत और पाकिस्तान की जनता को उस साम्प्रदायिक एकता के आदर्श की पूर्ति के लिए अपने को उत्सर्ग करने की प्रेरणा देता रहेगा जिसके लिए वे जीवित रहे और जिसके लिए प्रकट रूप से वह मरे।

गाँधीजी सभी धर्मों का समान रूप से आदर करते थे। सभी धर्मों की अच्छी बातों को अपने जीवन में उतारते थे उनका मानना था कि "दूसरे धर्मों या शास्त्रों की आलोचना करना मेरा काम नहीं है अलबत्ता यह मेरा विशेष अधिकार होना चाहिए कि उनमें जो सचाइयाँ हों उनकी मैं घोषणा करूँ और उन पर अमल करूँ।

गाँधीजी का धर्म अत्यन्त व्यावहारिक था उनके लिए मानव सेवा सबसे बड़ धर्म था। डॉ. राधाकृष्णनन के अनुसार- ''गाँधीजी दुनिया के दुख के प्रति संवेदनशील थे वह चाहते थे कि हर आँख का आँसू पोंछ सकें।'' सभी धर्म सहनशीलता की शिक्षा देते हैं फिर भी गम्भीर विवाद उठते हैं। वर्तमान समय की आज बहुत बड़ी

आवश्यकता है कि हम गाँधी के इन आदर्शों को अपनाएं कि सभी धर्मों का मूल तत्त्व एक और उसकी अनुभूति के तरीके भिन्न हैं।

सेठ गोविन्ददास पर गाँधीजी के इस दर्शन का बहुत प्रभाव था। वह 'ईद और होली' नाटक में साम्प्रदायिक दंगों पर साम्प्रदायिक सौहार्द में परिणित होते दिखाते हैं। ईद और होली एकांकी नाटक साम्प्रदायिक सौहार्द का उत्कृष्ट रूप दिखायी देता है। एक उद्धरण से स्पष्ट है कि- "खुदाबख़्श जिसने एक हिन्दू घर में आग लगाई फिर उसी में जाकर उस लड़के की जान भी बचाई। खुदाबख़्श- उस वक्त..... मैं ऐसा कर ही न सका जैसे किसी ने मुझको ऐसा करने के लिए मजबूर कर दिया। बहन यह खुदा का पैग़ाम था, खुदा का पैग़ाम।"[5] गाँधीजी जिस रूप में धर्म को समभाव दृष्टि से ग्रहण करते हैं, उसी को ग्रहण करने की प्रेरणा सेठ गोविन्ददास के नाटकों में भी मिलती है। जो वर्तमान सन्दर्भों में भी गृहणीय है।

महिला सशक्तिकरण के लिए गाँधीजी सदैव प्रयासरत रहे। इस सन्दर्भ में उनकी आत्मकथा में एक प्रसंग आया है कि 1913 के सत्याग्रह के समय तक स्त्रियों को जेल जाने से रोक रखा था यद्यपि वे अपनी पतियों के साथ सत्याग्रहों में जेल जाना चाहती थी। तभी दक्षिण अफ्रीका की एक अदालत में एक ऐसा फैसला सामने आया कि दक्षिण अफ्रीका में केवल ईसाई धर्म के अनुसार जो विवाह है वही वैध है और रीति के विवाह में हिन्दू-मुस्लिम-फारसी सभी विवाह रदद करार दे दिए गए कितनी ही भारतीय स्त्रियों का दर्जा धर्मपत्नी का न रहा, वह सरासर रखैल माने जाने लगी। तब नारियों का बहुत बड़ा समुदाय इसके विरुद्ध सत्याग्रह के लिए मैदान में उतरा और नारियाँ जेल भी गयी। जहाँ उन्हें कठोर कार्य करने पड़े और कुछ मृत्यु को भी प्राप्त हुई पर ये बलिदान सफल हुए क्योंकि धरती आज भी सत्य के आग्रह पर ही टिकी हुई है।

'स्पद्र्धा' नाटक का दृश्य केवल एक क्लब रूम है, इसमें स्त्री सदस्याएं भी हैं। एक पुरुष सदस्य के पक्ष में निर्वाचन के खड़े होने के विवाद में सम्बन्ध में अपनी प्रतिद्वंद्विनी महिला सदस्य के विरुद्ध अपवादात्मक पर्चा बँटवा दिया। इसी पर विचार करने के लिए एक मीटिंग रखी गई है। सभी का निष्कर्ष यह होता है कि- "स्त्री जब पुरुष के क्षेत्र में प्रतिद्वंद्विता करने उतर पड़ेगी तो वह पुरुष से किसी रक्षा की आशा नहीं कर सकेगी। दोनों को अपने-अपने बूते पर ही खड़ा होना होगा।[6] सेठ गोविन्ददास ने भी स्पद्र्धा नाटक में स्त्री सशक्तिकरण के इस रूप को नवीन नाटकीय कलेवर में प्रस्तुत किया है।

गाँधीजी देश के उत्थान में नारी कल्याण के प्रबल पक्षधर थे। नारी के प्रत्येक कार्य को वह बहुत महत्त्व देते थे। उनका मानना था कि प्रत्येक कार्य सामाजिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। चाहे वह घरेलू कार्य हो या दफ़्तरी। गाँधीजी इस बात को अनुभव करते थे कि स्त्रियों के अधिकार सीमित कर दिए गए हैं लेकिन वे ये भी कहते थे कि स्त्रियों को जो भी क्षमताएं हों उन्हें उसमें निष्णात होना चाहिए। वे स्त्रियों को नम्र सुशील व सच्चरित्र

देखना चाहते थे स्त्री को अहिंसा की प्रतिमूर्ति मानते थे और उसके साथ अन्याय नहीं होने देना चाहते थे। सेठ गोविन्ददास के नाटकों में भी यही भावनाएं स्पष्ट रूप में उभरी हैं।

'त्याग या ग्रहण' नाटक में गाँधीवादी और समाजवादी पात्रों को लेकर इन दोनों वादों का सिद्धान्तों की अपेक्षा आचरण का प्रत्यक्ष दर्शन कराया है- "धर्मराज गाँधीवादी युवक है, नीतिराज समाजवादी है। उसके प्रेम में धोखा पाकर गर्भवती विमला का साथ देने के लिए धर्मध्वज उसकी रक्षा के लिए उद्धृत होता है और विरोधियों द्वारा ईंट पत्थर खाकर भी वह विमला को बचा लेता है। गोविन्ददास जी ने दिखलाया है कि जीवन का सौन्दर्य आत्मत्याग में है, आत्मलोलुपता में नहीं। सच्चे आदर्शवादी अपने को संकट में डालकर भी दूसरे की रक्षा करते हैं। उन्होंने समाज के प्रति विरक्ति नहीं दिखाई है बल्कि धर्मध्वज के रूप में यह सन्देश दिया है कि समाजवाद को गाँधीवाद द्वारा आचरण की मर्यादा सीखनी होगी।[7] गाँधी जी समाज में फैली विधवा प्रथा, पर्दाप्रथा दोनों के प्रबल आलोचक थे। वे स्त्रियों को उनके जीने के सम्पूर्ण अधिकारों को देने के पक्षधर थे। सेठ गोविन्ददास ने गांधी जी से प्रभावित होकर इसी विषय को अन्तर्गत विधवा जीवन की समस्याओं का चित्रण अपने नाटक, 'दलित कुसुम', में किया है।

'दलित कुसुम' नाटक हिन्दू समाज की विधवाओं की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालता है। बाल विधवा है माँ से उसका वैधव्य देखा नहीं जाता और वह मदन नामक युवक से उसका विवाह तय करती है तभी मदन को किसी दूसरे लड़की पक्ष से पच्चीस हज़ार नकद व दहेज का प्रस्ताव मिलता है। वह प्रलोभन में कुसुम से पीछा छुड़ाने के लिए योजना सोच ही रहा होता है कि मन्दिर में महन्त की कुदृष्टि सुमन पर पड़ती है। मदन को शादी न करने का बहाना मिल जाता है और वह उसको दुश्चरित्रा कह कर चला जाता है। इस बदनामी के बाद कुसुम को कहीं भी स्थान नहीं मिल पाता वह आत्महत्या के लिए जाती है परन्तु बच जाती है उस पर मुकदमा चलता है। वही बयान देते समय उसका हार्टफेल हो जाता है। हिन्दू विधवा की हमारे समाज में क्या दयनीय स्थिति है समाज, धर्म, कानून उसके लिए कहीं भी स्थान नहीं है।[8]

नारी के संबंध में गाँधीजी कहा करते थे कि वह श्रद्धा की प्रतिमूर्ति है, धैर्य की संवाहिका है, स्त्री अहिंसा की प्रतिमूर्ति अर्थात् असीम प्यार, जिसका अर्थ है कष्ट सहन की असीम क्षमता। वह पुरुषों की माता है, उसके अलावा कोई इतना कष्ट सहन करने की क्षमता नहीं रखता। वह बच्चे को नौ महीने तक पेट में पालती है बच्चे के जन्म की खुशी में वह सारे कष्टों को भूल जाती है। स्त्री अपने इस प्रेम को सारी मानवता पर बिखेर देती है।

परन्तु यदि बेटी जन्मे तो पुरुष का कठोर व्यवहार नारी को बहुत दुर्बल बना देता है इसी समस्या को सेठ गोविन्ददास ने 'शाप और वर' में उठाया है।

होश आने पर जो पहला स्वर मैंने सुना वह तुम्हारी माँ का था 'लड़की हुई है।'... उस स्वर में कैसी वेदना भरी हुई थी.... मानो भूकम्प हो गया है। आग बरसी है। बिजली गिरी है.... लड़की इतनी तिरस्कृत वस्तु है इतनी बुरी कि कोई उसकी ओर आँख उठाकर ही नहीं देखता था।

यह एक पात्री नाटक है जिसमें नायिका का मर्मांतक अन्त दिखाया गया है। प्रसव के उपरान्त मृत्यु से पहले वह थोड़े समय में अपनी सारी वेदना को अपने पति से व्यक्त करती है। शायद मैं जा रही हूँ.. सुनो जाते जाते शाप देती हूँ तुम्हारा वंश निर्वंश हो जाए।[9]

अतः सेठ गोविन्ददास जी ने नारी के दर्द को अपने नाटकों में उठाकर समाज को सचेत किया है। गाँधीजी की आध्यात्मिक जीवन में ज्ञान, भक्ति व कर्म को आधार माना। सेठजी ने भी अपने नाटकों में इसी प्रभाव को ग्रहण किया है।

'सुख किसमें'? इस नाटक में पूँजीपति विलासी सृष्टिनाथ को व्यापार में घाटा होता है। उसका रंगमहल उजड़ जाता है। वह गंगा में डूबकर आत्महत्या करना चाहता है परन्तु एक परिव्राजक उसे इससे रोक संन्यास की दीक्षा देता है परन्तु उसका विलासी मन उसमें रमता नहीं प्रेमपूर्णा नामक स्त्री से विवाह व एक बच्ची के साथ वह सुखी जीवन जी रहा होता है तभी उस बच्ची का देहान्त हो जाता है और दोनों पति-पत्नी विकल-विह्वल अध्यात्म पथ अपनाते हैं। इसमें सेठ गोविन्ददास ने यह दिखा कि वास्तव में वैभव का विलास इन्द्रधनुष की तरह उड़ जाता है किन्तु जीवन की सात्विकता चाँदनी की तरह हृदय को शीतल करती रहती है। 'सुख किसमें'? इस प्रश्न का उत्तर लेखक ने एषणाओं से मुक्त होने में दिखलाया है। यह नाटक विश्वबोध उत्पन्न करता है।

'संतोष कहाँ'? नाटक में मनसाराम गरीब से अमीर हुआ धनाढ्य है जिसे जीवन की किसी भी स्थिति में सन्तोष नहीं है न गरीबी न अमीरी यहाँ तक कि गाँधीजी के आदर्शों पर स्वनिर्मित आश्रम में भी उसे सन्तोष नहीं मिलता। कारण यह है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह महत्वाकांक्षी होकर प्रवेश करता है सेठ गोविन्ददास महत्वाकांक्षा के लिए नहीं बल्कि कर्तव्य के लिए कर्तव्य करने में ही सन्तोष से जीवन को मनोहर व सफल करने के पक्ष में है।[11]

'सुख किसमें'? विश्वबोध की स्थापना करता है तो 'सन्तोष कहाँ'? नाटक विश्वबोध के बाद का कर्तव्य उपस्थित करता है। एक आत्म चिन्तन दूसरा लोक चिंतन प्रस्तुत करते हैं।

'सिद्धान्त स्वातंत्र्य' में लेखक ने एक ऐसे गांधीवादी के सर्मथक पुत्र को दिखाया है जो अपने पिता से झगड़ कर देश के राजनीतिक आन्दोलनों में भाग लेता है यह युवक थोड़े समय बाद सत्याग्रह और असहयोग के प्रति असफलता घोषित कर सरकार का प्रिय पात्र बन जाता है। अन्ततः मिनिस्टर बन जाता है उसके पुत्र को आन्दोलन में गोली लग जाती है और वह मूर्च्छा में चला जाता है। नायक आन्दोलन में उसी कर्मठता से जुड़ा

रहता है और कहता है कि मैं मस्तिष्क से शासित होता हूँ, उसके वृद्ध पिता कहते हैं कि यह कैसा सिद्धान्त स्वातंत्र्य है।[12]

'महत्त्व किसे'? नाटक में कर्मचन्द त्यागी हृदय का धन कुबेर है। देश-सेवा में वैभव-विहीन हो जाता हैं जिससे जो लोग उससे जुड़े आगे पीछे रहते थे वे दूर होने लगते हैं और बदनामी करने लगते हैं कर्मचन्द सच्चाई के पथ पर अडिग है। वह दुरंगी दुनिया को देख हतप्रभ है। पत्नी व्यापारयादि में सहायता कर पति की खोई वैभव कीर्ति को पुनः प्राप्त कर लेती है तो लोग फिर आसपास यशोगान के लिए आ जाते हैं। सेठ गोविन्ददास ने का लक्ष्य इस नाटक में यह दिखाना है कि मनुष्य का हृदय महत्त्वपूर्ण है न कि कान, भाड़े के टट्टुओं की प्रशंसा निन्दा का कोई मोल नहीं है। प्रश्न यह है कि 'महत्व किसे'? त्याग को या धन को?

'प्रकाश' सामाजिक नाटक है। प्रकाश गाँधीवाद के रंग में रंगा है। सत्याग्रह उसका ब्रह्मास्त्र है। गवर्नर साहब को दी जा रही एक पार्टी में दो प्रकार का प्रबन्ध है एक स्वदेशी मिठाई, नमकीन वाला, दूसरा विलायती केक बिस्कुट आदि वाला। गवर्नर के आने पर प्रकाश इस भेदभाव की कड़ी आलोचना करता हुआ एक प्रभावमयी वक्ता झाड़ता है और स्वदेशी अंश वाले प्रायः सभी सज्जन पार्टी का बहिष्कार करके चले जाते हैं रंग फीका हो जाता है। नाटक के अन्त में जब प्रकाश अपना एक आदर्श नेता के रूप में सामने आता है और राजा अजयसिंह जेल भेज दिया जाता है। अन्त में उन्हें पता चलता है कि प्रकाश उन्हीं का औरस पुत्र है जिसकी माँ को मिथ्या आशंका पर उन्होंने घर से निकाल दिया था।[13]

गांधीजी ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने के लिए जो भागीरथ प्रयत्न किए। उसके फलस्वरूप हम आज हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में पाते हैं। राष्ट्रभाषा के लिए गाँधीजी हिंदी या उर्दू शब्द की अपेक्षा हिंदुस्तानी शब्द का प्रयोग उचित समझते थे। गाँधीजी ने बार-बार हिंदी को परिभाषित करने का प्रयत्न किया। उनके अनुसार हिंदी उस भाषा का नाम है जिसे हिंदू और मुसलमान कुदरती तौर पर बगैर प्रयत्न के बोलते हैं। हिंदुस्तानी और उर्दू में कोई फर्क नहीं है।

गाँधीजी के दो मूलभूत सिद्धान्त थे- कताई और हिंदी सीखना उन्होंने कहा कि "यदि मुझे अकेले छोड़ दिया जाए तो आप मुझे अपनी शक्ति भर सूत कातने और दत्तचित्त होकर हिंदुस्तानी पुस्तकों को पढ़ते हुए ही पाएंगे।[14]

उनके विचार में हिंदी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है क्योंकि राष्ट्रभाषा के पद पर आरूढ़ होने के लिए यह आवश्यक है सर्वसाधारण उस भाषा को आसानी से समझ सके यह गुण सिर्फ हिंदी में ही है। सेठ गोविन्ददास महात्मा गाँधी के अनुयायी हैं और हिन्दी भाषा के महान सर्वमान्य विद्वान हैं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद दिलाने के लिए उन्होंने समस्त भारत में प्रचार किया। संविधान परिषद् में इसके लिए संघर्ष किया और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में समस्त भारत का भ्रमण किया।

सेठ गोविन्ददास ने अखिल भारतीय स्तर पर समस्त भाषा-भाषी विद्वानों का परि-सम्मेलन आयोजित किया और संविधान में राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी व अहिन्दी भाषा विधेयकों को स्वीकार कराने के निमित्त बाध्य किया। यदि गाँधी के बाद राष्ट्र निर्माण के निमित्त जो स्थान नेहरू का है वहाँ हिन्दी साहित्य में उसी प्रकार का स्थान राजर्षि टंडन बाद महाप्राण गोविन्ददास का है।

इस प्रकार गाँधी जी का सम्पूर्ण जीवन दर्शन सेठ गोविंददास के जीवन और साहित्य को प्रकाशित करता है क्योंकि वैभवपूर्ण जीवन मिलने के बाद भी उसे अस्वीकार कर वे गाँधी के अनुयायी बनकर जनता जनार्दन में जा मिलें।

आधार ग्रन्थ

1. सेठ गोविन्द दास नाट्य कला तथा कृतियाँ, रामचरण महेन्द्र, भारती साहित्य मन्दिर - फवारा, दिल्ली, 1956
2. हर्ष गोविन्द दास, भारतीय साहित्य मन्दिर, 1961
3. स्नेह या स्वर्ग, भारतीय विश्व प्रकाशन, दिल्ली
4. गोविन्द दास ग्रंथावली, भारतीय साहित्य मन्दिर, 1957
5. हिन्दी के विकास में महात्मा गांधी का योगदान (लेख) डा. मीना गौड, साभा इंटरनेट

संदर्भ-

1. भूमिका
2. विजय बेलि, पृ0 61
3. हिंसा से अहिंसा, पृ0 165
4. गांधीजी, पृ0 125
5. ईद और होली, पृ0 187
6. स्पृद्धा, पृ0 183
7. त्याग या ग्रहण, पृ0 161
8. दलित कुसुम, पृ0 149
9. शाप और वर, पृ0 198
10. सुख किसमें? पृ0 171
11. सन्तोष कहाँ? पृ0 169

12. सिद्धान्त और स्वातन्त्रय, पृ0 147
13. प्रकाश, पृ0 144
14. गांधीजी, पृ0 61

डॉ. शगुफ्ता नियाज़
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
वीमेंस कालेज, ए०एम०यू०